।। ॐ नमः सद्गुरुदेवाय ।।

श्री परमहंस आश्रम, शक्तेषगढ़-मीरजापुर के संगम क्षेत्रीय शिविर, गंगा तट, प्रयागराज में दिनांक 10-02-2007 को आयोजित विश्व हिन्दू परिषद् के तृतीय सम्मेलन में अप्रवासी भारतीयों के समक्ष

स्वामी श्री अड़गड़ानन्दजी महाराज का उद्बोधन

(विश्व हिन्दू परिषद के केन्द्रीय सह मंत्री पंडित रामेश्वर दयाल जी ने बताया कि हिन्दू समाज में बिखरे परन्तु हिन्दू धर्म के अन्तर्गत विभिन्न मत, पंथ, सम्प्रदाय में एकता स्थापना की दृष्टि से विश्व हिन्दू परिषद की स्थापना श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, अगस्त, सन् 1964 में पूज्य स्वामी श्री चिन्मयानन्द जी महाराज के संदीपनि आश्रम, पवई, मुम्बई में हुई।

उस समय पूज्य राष्ट्रीय संत श्री तुकोड़ी जी महाराज, मास्टर तारा सिंह, जैन मुनि सुशील कुमार आदि उस बैठक में थे। उसमें निर्णय हुआ कि जो अपने पूर्वजों का सम्मान करता हो, हिन्दू धर्म के अन्तर्गत किसी भी मत, पंथ, सम्प्रदाय की पूजा-पद्धति, उपासना को मानने वाला हो, विश्व के किसी भी भू-भाग में रहता हो, और इस समय अपने को हिन्दू कहता हो, उसका रहन-सहन, खान-पान जैसा भी हो, वह हिन्दू है।

अभी तो समाज बिखरा हुआ है – कोई जैनी है, कोई बौद्ध, कोई सनातनी, कोई आर्यसमाजी, कोई सिख, कोई शाक्त – आवश्यकता है सबके ऊँच-नीच, भेदभाव को समाप्त कर एक संगठन की। समाज संगठित होगा तब विधि-निषेध पूज्य संत निश्चित करेंगे। इस दृष्टि से भारत में पहली बार सभी सम्प्रदायों के पूज्य आचार्य बिना किसी सिंहासन के एक ही साथ मंच पर बैठे।

दूसरे सम्मेलन में मंच पर थे– जगद्‌गुरु शंकराचार्य - ज्योतिष पीठ, बौद्ध गुरु दलाई लामा – जबकि किंवदन्ती थी कि यदि सामने से मस्त हाथी आ रहा हो तो भी प्राण बचाने के लिए शंकराचार्य को न तो जैन मंदिर में जाना चाहिए और न बौद्ध मठ में।

परिषद का ही प्रयास था कि कांची शंकराचार्य दिल्ली में जैन मंदिर में गये, अछूत कही जाने वाली बस्तियों में गये। पुष्टिमार्ग के प्रथम आचार्य बाल्मीकि बस्ती में गये जबकि उनके सम्प्रदाय में केवल अपनी माँ-बहन के हाथ का बना खाना खाने का ही नियम है। आज इसी का परिणाम है, भारत में जितने भी मत हैं, सभी के यहाँ विश्व हिन्दू परिषद के अध्यक्ष माननीय अशोक जी बुलाये जाते हैं, उनका सम्मान होता है, और उसी क्रम में आज यहाँ विश्व हिन्दू परिषद का तृतीय सम्मेलन गंगा तट पर श्री परमहंस आश्रम, शक्तेषगढ़ के शिविर में आयोजित है। इसी तृतीय सम्मेलन में वरिष्ठ संतों, विश्व हिन्दू परिषद के पदाधिकारियों तथा देश-विदेश से आये हुए प्रतिनिधियों द्वारा यह निर्णय लिया गया कि आदिशास्त्र श्रीमद्‌भगवद्‌गीता भाष्य 'यथार्थ गीता' भारत का राष्ट्रीय धर्मशास्त्र है जो मानव मात्र का निर्विवाद धर्मशास्त्र है।)

सर्वप्रथम इस सम्मेलन के मंच पर श्री साधनानन्द जी (तानसेन बाबा जी) का भजन हुआ–

अमर हूँ मैं आत्मा गीता सिखाती है मुझे।
अज अमर अद्वैत हूँ गीता बताती है मुझे॥
इसलिए मौत से डरना नहीं चाहिए।
मनुष्य को हर रोज गीता पाठ करना चाहिए॥

शुद्ध चेतन आत्मा द्रष्टा सकल जग जाल का।
इच्छुक हूँ भगवद्-कृपा का भय नहीं अब काल का॥
ऐसा निश्चय धारण कर निर्भय बिचरना चाहिए।
मनुष्य को हर रोज गीता पाठ करना चाहिए॥

पाठ गीता का सदा करना बड़ा सतकर्म है।
पाठ गीता का सदा करना ही मानव धर्म है।
ज्ञान गीता का सदा हृदय में धरना चाहिए।
मनुष्य को हर रोज गीता पाठ करना चाहिए।।

ज्ञान गीता का जिन्हें दुष्कर्म वे करते नहीं।
ज्ञान गीता का जिन्हें वे मौत से डरते नहीं।।
इसलिए नित ज्ञान गीता का सुमिरना चाहिए।
मनुष्य को हर रोज गीता पाठ करना चाहिए।।

* * * * *

कार्यक्रम का संचालन करते हुए श्री एम.के. सिन्हा जी ने कहा-

बहनों और भाइयो! आश्रम की तरफ से और सारे गुरुभाइयों की तरफ से मैं आप सबका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ। दो-ढाई अक्षरों का एक शब्द जिसे हम धर्म के नाम से पुकारते हैं, कहीं खो गया है। आज पूज्य गुरुदेव के श्रीचरणों में हम उस शब्द को ढूँढ़ेंगे, उसका मंथन करने का प्रयत्न करेंगे। इतने महत्वपूर्ण विषय पर कुछ कहने से पहले आवश्यक है कि पहले हम उन महापुरुष के श्रीचरणों में चलें जहाँ से धर्म प्रसारित होता है, धर्म की परिभाषा दी जाती है।

इस कार्यक्रम का शुभारम्भ करने से पहले हम करेंगे दीप-प्रज्वलन! हम प्रार्थना करेंगे सर्वप्रथम अनन्त श्री विभूषित योगिराज, युगपितामह, परमपूज्य स्वामी श्री परमानन्द जी के श्री चरणों में, जो पूज्य गुरुदेव के आराध्य गुरु रह चुके हैं, उनके श्रीचरणों में दीप-प्रज्वलन के लिए हम आग्रह करते हैं मंच पर बैठे श्री सिंहल जी से। हम प्रार्थना करेंगे कि पूज्य दादा गुरु जी के श्रीचरणों में दीप प्रज्वलित करके इस कार्यक्रम का शुभारम्भ करें।

* * * * *

(श्री अशोक सिंहल जी द्वारा दीप-प्रज्वलन और वेद-मंत्रोच्चार ध्वनि)

श्री एम.के.सिन्हा जी- आज के कार्यक्रम के प्रारम्भ होने की विधिवत घोषणा हो चुकी है। बन्धुओ! हमारे देश का यह सौभाग्य रहा है कि हमने जीवन में जब कभी भी कोई श्रेष्ठ कार्य किया है, हमने पहले गुरु-वंदना की है। हम अब इस कार्यक्रम में आगे चलते हैं और आपके सामने गुरु-वंदना प्रस्तुत करते हैं।

वन्दना

ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान् की जय

जय सद्गुरुदेवं, परमानन्दं, अमर शरीरं अविकारी।
निर्गुण निर्मूलं, धरि स्थूलं, काटन शूलं भवभारी।।

सूरत निज सोहं, कलिमल खोहं, जनमन मोहन छविभारी।
अमरापुर वासी, सब सुख राशी, सदा एकरस निर्विकारी।।

अनुभव गम्भीरा, मति के धीरा, अलख फकीरा अवतारी।
योगी अद्वेष्टा, त्रिकाल द्रष्टा, केवल पद आनन्दकारी।।

चित्रकूटहिं आयो, अद्वैत लखायो, अनुसुइया आसन मारी।
श्री परमहंस स्वामी, अन्तर्यामी, हैं बड़नामी संसारी।।

हंसन हितकारी, जग पगुधारी, गर्व प्रहारी उपकारी।
सत्-पंथ चलायो, भरम मिटायो, रूप लखायो करतारी।।

यह शिष्य है तेरो, करत निहोरो, मोपर हेरो प्रणधारी।
जय सद्गुरुदेवं, परमानन्दं, अमर शरीरं अविकारी।

निर्गुण निर्मूलं, धरि स्थूलं, काटन शूलं भवभारी।।
श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय......

* * * * *

श्री एम.के. सिन्हा जी- गुरु के प्रति समर्पित इस वंदना के पश्चात् मंच पर आसीन श्री अशोक सिंहल जी से मैं प्रार्थना करूँगा कि पूज्य स्वामी जी (श्री अड़गड़ानन्द जी महाराज) को माल्यार्पण करें और मंचासीन विश्व हिन्दू परिषद के वरिष्ठ पदाधिकारियों का आश्रम की ओर से माल्यार्पण द्वारा बहुमान किया जाय।......... माल्यार्पण कार्यक्रम के अनन्तर हम माननीय सिंहल जी से प्रार्थना करेंगे कि पूज्य स्वामी जी महाराज का परिचय थोड़े-शब्दों में सबको दें।

* * * * *

श्री अशोक सिंहल जी- पूज्य महाराज जी! मंच पर उपस्थित हमारे विश्व हिन्दू परिषद के विदेश में रहने वाले सभी हिन्दू-बन्धुओं को परिषद के कार्य से समन्वित करने वाले हमारे ग्लोबल कोआर्डिनेटर श्री महेश भाई मेहता जी! आज स्वामी दयानन्द जी सरस्वती को यहाँ मंच पर उपस्थित रहना था, जिस विमान से उन्हें आना था, कुहरे के कारण प्रातः साढ़े छः बजे वह चल नहीं सका और उसको शायद स्वीकृति ही नहीं मिली, वे वाराणसी में शायद आ गये होंगे और हो सकता है कि कार्यक्रम के बीच में वे यहाँ आयें।

इस तृतीय विश्व हिन्दू सम्मेलन में विश्व भर के विभिन्न देशों के आये हुए हमारे हिन्दू प्रतिनिधि बन्धुओं! और पूज्य स्वामीजी की भक्त-मंडली! मातायें! और हमारे वेदपाठी छात्रगण! पूज्य महाराज जी का परिचय मैं कैसे कराऊँ! देखने में तो हम सब जैसे ही वे शरीरधारी हैं किन्तु हमारे देश में एक आध्यात्मिक परम्परा है और उस साधना में जो महापुरुष सिद्ध हो जाते हैं, उनका परिचय कराना बड़ा कठिन है। मुझसे पहले गुरुदेव पूछा करते थे कि तुम्हारे श्री गुरु जी (गोलवरकर जी) कहाँ से बोलते हैं? मुझे यह प्रश्न बड़ा अटपटा सा लगता था कि वह भी एक सिद्ध पुरुष थे कि क्या बोलें कि और भी धरातल है क्या? उस समय जब उन्होंने प्रश्न पूछा था, मैं इसका जवाब देने में असमर्थ था। मेरे समझ में वह प्रश्न नहीं आता था मगर धीरे-धीरे उनके सम्पर्क से और बड़े महात्माओं, और सिद्ध पुरुषों के सम्पर्क से यह बात

समझ में आने लगी कि हमारे सिद्ध पुरुषों का धरातल कुछ भिन्न ही होता है। पूज्य महाराज जी ने उनके ही द्वारा लिखित 'यथार्थ गीता' जब मुझको दी, मैं उसको दिल्ली ले आया और उसे खोला तो तेरहवें अध्याय का बाइसवाँ मंत्र मुझे पढ़ने को मिला और महाराज जी की व्याख्या पढ़ने के बाद बहुत से विचार सामने आ गये और शायद बहुत से प्रश्नों का उत्तर भी उससे मिला। वह श्लोक इस प्रकार है–

उपद्रष्टा अनुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन् पुरुषः परः।। *(गीता, 13/22)*

स्वामी अड़गड़ानन्द जी महाराज ने उसकी जो व्याख्या की है, वह मैं आपको बताना चाहूँगा कि वह पुरुष हृदय देश में '**उपद्रष्टा**'– बहुत ही समीप – हाथ-पाँव-मन जितना आपके समीप है, उससे भी अधिक समीप द्रष्टा के रूप में स्थित है। उसके प्रकाश में आप भला करें, बुरा करें, उससे कोई प्रयोजन नहीं। वह साक्षी के रूप में खड़ा है। यह जो साक्षी के रूप में पुरुष खड़ा है, वही साधना का सही क्रम पकड़ में आने पर जब पथिक कुछ ऊपर उठा, उसकी ओर बढ़ा, तो द्रष्टा पुरुष का क्रम बदल जाता है। वह '**अनुमन्ता**' अर्थात् अनुमति प्रदान करने लगता है, अनुभव देने लगता है। साधना द्वारा और समीप पहुँचने पर वही पुरुष '**भर्ता**' बनकर भरण-पोषण करने लगता है जिसमें आपके योगक्षेम की भी व्यवस्था कर देता है। साधना और सूक्ष्म होने पर वही '**भोक्ता**' हो जाता है– '**भोक्तारं यज्ञ तपसाम्**'– यज्ञ, तप जो कुछ भी बन पड़ता है, सबको वह पुरुष ग्रहण करता है और जब ग्रहण कर लेता है, उसके बादवाली अवस्था में '**महेश्वर**' अर्थात् महान् ईश्वर के रूप में परिणत हो जाता है, वह प्रकृति का स्वामी बन जाता है। किन्तु अभी भी कहीं प्रकृति जीवित है, तभी वह उसका मालिक है। इससे भी उन्नत अवस्था में वही पुरुष '**परमात्मेति चाप्युक्तो**'– जब परम से संयुक्त हो जाता है, तब परमात्मा कहलाता है। इस प्रकार शरीर में रहते हुए भी वह पुरुष आत्मा '**परः**' ही है, सर्वथा इस प्रकृति से परे ही है। अंतर इतना ही

है कि आरम्भ में वह द्रष्टा के रूप में था, साक्षी के रूप में था, क्रमशः उत्थान होते-होते परम का स्पर्श कर परमात्मा के रूप में परिणत हो जाता है।

मैंने यह पुस्तक हमारे देश के राष्ट्रपति महोदय को दी। श्री ए.पी.जे. अब्दुल कलाम जी के हाथ में जब दी तो मैंने कहा– आप इस श्लोक को पढ़िये और पढ़ने के पश्चात् उन्होंने कहा कि साधना करते-करते आपके भीतर बैठा जीवात्मा जो साक्षी के रूप में है, जो अनुमति प्रदान करने लगता है, धीरे-धीरे भोक्ता का रूप लेता है, साधना करते-करते वही मनुष्य महेश्वर बन सकता है क्या? मैंने उनसे इतना ही कहा कि जिन महापुरुष ने गीता का यह भाष्य किया है, इसी अवस्था को प्राप्त करके ही उन्होंने इस भाष्य को लिखा है। इसलिए कोई दूसरा धरातल भी है क्या, के सम्बन्ध में गुरुजी का जब भाषण हुआ करता था, तो लगता नहीं था कि वे केवल सांसारिक क्रम से ही बोलते हैं। धीरे-धीरे यह बात ध्यान में आयी है। और जब महाराज जी के गीता भाष्य को चार-पाँच बार मैंने आद्योपान्त पढ़ा, तो मुझे ऐसा लगा कि गीता का जिस प्रकार का भाष्य महाराज जी ने किया है, वह सामान्य मनुष्य के द्वारा नहीं हो सकता है। कई बार परमेश्वर वही प्रेरणा करते हैं, और वही लिखते हैं, वही लिखवाते हैं।

महाराज जी बहुधा कहते हैं कि उनके गुरुदेव ने कहा था कि तुम्हारी एक वृत्ति शेष रह गयी है और तुम्हें गीता पर कुछ लिखना होगा। अब महाराज जी कहते हैं कि स्वयं उनके गुरुदेव ने उनके अंदर बैठ करके गीता का यह भाष्य लिखा है। जहाँ तक मैं समझता हूँ कि साधना से ऐसी स्थितियाँ आती हैं। गुरुदेव तो परमात्मा का स्वरूप ही होता है और इसलिए इस युग के लिए वह भाष्य हमको देकर गये हैं। युग-परिवर्तन होते रहते हैं, अनेक परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं, समस्याएँ बदलती रहती हैं। देश के सामने सांस्कृतिक संकट, सामाजिक संकट आते हैं। कई बार अनेक रूढ़ियाँ समाज को पीछे की ओर खींचती हैं। इनके परिवर्तन की आवश्यकता रहती है, उनके उत्तर देने पड़ते हैं। आग जलते-जलते राख हो जाती है और जब राख हो

जाती है तो अग्नि समाप्त हो जाती है, इसी प्रकार कोई नियम किसी काल में बना, धीरे-धीरे वह नियम हमारे समाज के लिए अभिशाप बन जाता है। उनको बदलने की आवश्यकता रहती है, एक नया अवतरण, एक नया रूप देना पड़ता है। वह ऐसे ही महापुरुष दे सकते हैं जिनकी वाणी स्वयं ईश्वर की वाणी के रूप में हो। इस प्रकार अत्यन्त संकट काल में समाज की रक्षा के लिए हम बहुत से उपाय सोचते हैं। मगर तुलसीदास जी ने जो रामचरितमानस हम सबको दिया, वह पूरे हिन्दू समाज की रक्षा करने के लिए हमको दिया गया। वह उस युग की आवश्यकता थी, वह उन्होंने दिया। वह सामान्य कृति नहीं थी। उसी एक कृति ने समाज को आसन्न संकट से मुक्त करने का बड़ा भारी कार्य किया।

आज भी विश्व बहुत बड़े संकट में है इसलिए विश्व को एक आध्यात्मिक मार्ग की आवश्यकता है। कभी ऐसे ही साधक भारत के भीतर बड़ी संख्या में प्रशिक्षित होते थे। जब वे भारत के बाहर जाते थे तो उनके जीवन से प्रभावित होकर गीतोक्त साधन करने वाले लोग सारे संसार में फैल गये और यह सारा संसार उनके प्रभाव में आया। उस काल में हमने कहा कि हम संसार में जगत्गुरु के नाते से प्रतिष्ठित हो गये किन्तु बड़ी भारी विस्मृति हमारे देश में आयी और उस विस्मृति के कारण हमारा जो प्रभाव था, वह भी विस्मृत हो गया, आत्मा की भी विस्मृति हो गयी। इस आत्मा की विस्मृति को जगाने के लिए पूज्य स्वामी अड़गड़ानन्द जी महाराज ने यह भाष्य लिखा है। मैं बहुत कुछ नहीं बोलना चाहूँगा क्योंकि मैं चाहूँगा कि स्वयं महाराज जी के मुख से ही हम गीतोक्त साधना क्या है, इसको हम समझें। और मैं समझता हूँ कि यह ग्रन्थ मानव-मात्र के लिए है। यह केवल हिन्दू समाज का ग्रन्थ है, यह तो सत्य है किन्तु यह राष्ट्रग्रन्थ भी है और संसार भर के लिए संसार का मानव धर्मग्रन्थ है। मैं इतना ही कह करके अपनी वाणी को विराम देता हूँ। इससे अधिक मैं महाराज जी का परिचय कराने में समर्थ नहीं हूँ।

* * * * *

श्री एम.के. सिन्हा जी– अभी आपके सामने हमारे आदरणीय श्री अशोक सिंहल जी ने एक बहुत ही हृदयस्पर्शी परिचय पूज्य गुरुदेव का दिया और जैसा कि उन्होंने अभी बताया कि गीता खोलने पर जो पहला श्लोक उनको दिखाई पड़ा, **'उपद्रष्टा अनुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वर। परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन् पुरुषः परः॥'**, उस एक श्लोक ने उनके हृदय को छू लिया। बन्धुओ! 'यथार्थ गीता' कुछ ऐसी ही पुस्तक है। आप इस पुस्तक को कहीं से भी खोल लीजिए, इसके श्लोकों की कहीं से भी व्याख्या देख लीजिए, सारी व्याख्यायें अद्‌भुत हैं, आप स्वयं अनुभव करेंगे।

एक बहुत पुराना प्रसंग है– भगवान राम जब प्रयाग पहुँचे थे तो त्रिवेणी के इस तट पर उन्होंने भरद्वाज मुनि से पूछा था– मुझे किधर जाना है? त्रिवेणी, जैसा आप सब जानते हैं, गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम! गंगा ज्ञान, यमुना योग और सरस्वती वैराग्य का प्रतीक है। सांस्कृतिक दृष्टि से देखें तो यह प्रश्न कि हमें किधर जाना है?– यह एक ऐसा ही महापुरुष बता सकता है जिसके भीतर ज्ञान, योग और वैराग्य समाहित हो चुका है और जिसने इन तीनों का आचरण करके परम पुरुष परमात्मा का दर्शन प्राप्त कर लिया हो। बन्धुओ! शास्त्र में भी कुछ ऐसा ही निर्णय है। गीता कहती है–**'तस्मात् शास्त्रं प्रमाणं ते'** (गीता, 16/24)–कर्तव्य और अकर्तव्य के निर्धारण में शास्त्र ही प्रमाण हैं। यही शास्त्र यह भी संकेत करता है कि **'तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनः तत्त्वदर्शिनः॥'** (4/34)– अर्जुन! उस ज्ञान को जानने के लिए किसी तत्त्वदर्शी महापुरुष की शरण में जाओ, उन्हें भली प्रकार दण्ड-प्रणाम करो, उनकी सेवा करो और निष्कपट भाव से उनसे प्रश्न करके उस ज्ञान को जानो। इसके अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं है।

आज हमारे आदरणीय अशोक सिंहल जी ने धर्मशास्त्र का जो महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया है, उसके समाधान के लिए हम आप सबसे पूज्य गुरुदेव के श्रीचरणों में चलने की प्रार्थना करते हैं और उनसे ही धर्म और धर्मशास्त्र के बारे में जानते हैं। हम प्रार्थना करेंगे कि वह अपने आशीर्वचन से तथा अपने सत्संग से हमें आप्लावित करें।

* * * * *

परम पूज्य स्वामी जी –

बोलो जय गुरुदेवं जय गुरुदेव। जय गुरुदेवं जय गुरुदेव।

उत्तरकाण्ड उत्तर है, सारे प्रश्नों का समाधान है। रामचरितमानस के अंत में गोस्वामी जी ने निर्णय दिया कि धर्म क्या होता है और धार्मिक कौन है?

सोइ धर्मग्य गुनी सोइ ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता।।
धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरन जाकर मन राता।।

वह सर्वज्ञ है, धर्म का मर्मज्ञ है, गुणी है, ज्ञाता है, पंडित है, वह दानदाता है। कौन? **'राम चरन जाकर मन राता'**– राम – एक परमात्मा के चरणों में जिसका मन अनुरक्त है।

नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धान्त नीक तेहिं जाना।।
दच्छ सकल लच्छन जुत सोई। जाकें पद सरोज रति होई।।

वह नीति में निपुण है, परम सयाना अर्थात् समाज का सबसे सुलझा हुआ पुरुष है। वह क्रिया में दक्ष है, वेदों का सिद्धान्त उसने भली प्रकार जान लिया है। किसने? **'राम चरन जाकर मन राता'**– राम – एक परमात्मा के चरणों में जिसका मन अनुरक्त है।

भोलेनाथ शिव मानस के रचयिता हैं– **'रचि महेस निज मानस राखा।'** उन्हीं भोलेनाथ शिव ने निर्णय दिया कि धार्मिक कौन?

सो कुल धन्य उमा सुनु, जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुवीर परायन, जेहिं नर उपज बिनीत।।

हे पार्वती! वह सारा कुल कृतार्थ है जिस कुल में किसी एक का राम – उन परम प्रभु के चरण-कमलों में अनुराग पैदा हो गया हो। बस इतना ही है धर्म।

मानस गीता का ही संदेश है, उसमें गीता का ही निर्णय है। गीता के अंत में भगवान ने कहा–

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ (गीता, 18/66)

अर्जुन! सभी धर्मों को **'परित्यज्य'**– दूर कहीं छोड़ दे, दूर फेंक; एकमात्र मेरी शरण में हो जा, मैं तुम्हें सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तुम मुझे प्राप्त हो जाओगे, तुम मेरा अविनाशी पद पाओगे। गीता में जो एक मेरी शरण वही तुलसीदास का है – एक राम की शरण।

आज धर्म की समस्या के संबंध में एक पत्रक पढ़ने को मिला– आतंकवाद, घुसपैठ, बदलाव – यह आज का नहीं है। मध्यकालीन भारत में यह शुरू हुआ, भारत के खैबर दर्रा से आक्रान्ताओं ने प्रवेश किया और तब से तलवारें चलती रहीं, धर्म जूझता रहा। उस समय भारत का धर्म था कि केवल क्षत्रिय ही युद्ध करेगा। वह सौ में केवल सात होते थे। आधी हो गयी औरतें, कुछ हो गये बच्चे। अब सौ व्यक्तियों में से तीन-चार पुरुषों पर कब्जा कर लो और शेष भेड़ों को उठा ले जाओ। बाद में धर्म की परिभाषा आ गयी कि पचास प्रतिशत जनता तो अगले जन्म में भजन करेगी जब कभी उत्तम कुल में जनम जायेंगे। उस समय स्मृतिकाल था। सैकड़ों स्मृतियाँ लिखी गयीं जिसकी व्यवस्थाओं से बिखराव की वजह से भारत का नागरिक टुकड़े-टुकड़े में बिखर गया। आँधी में जब आम गिरते हैं तो किसी का पेड़ हो, उन आमों को कोई भी बच्चा उठा ले जाता है। तो हिन्दू तो हो गया आँधी का आम जिसका कोई संगठन नहीं रह गया था। धर्म की परिभाषायें बिगड़ चुकी थीं, वही लपटें आज भी लगी हुई हैं।

हमारे आश्रम में रूस के एक दम्पति आये। हमने पूछा, आपके गले में त्रिशूल है, आपके बैग पर त्रिशूल का चित्र है, इसका क्या मतलब है? वह बोले– महाराज! हमलोग आर्य हैं। पूरा विश्व आर्य था। आर्य धर्म भारत से निकला था। पता नहीं वह धर्म कहाँ चला गया, कहाँ लुप्त हो गया। हम वही खोजने भारत आये हैं। पहले भारत विश्वगुरु था। **'कृण्वन्तु विश्वम् आर्यम्'**– पूरे विश्व को आर्य बना डालो। विश्व रो रहा है भारत के लिए,

धर्म ढूँढ़ रहा है; और भारत रो रहा है अपनी कुरीतियों के लिए! वह अपनी प्रथाओं और परम्पराओं के लिए आँसू बहा रहा है।

आजकल भी ऐसे उदाहरण यत्र-तत्र सुनने को मिल जाते हैं। अभी जयपुर में साल-दो साल पहले तालाब पर हरिजन चले गये तो हंगामा हो गया। घोड़े पर चढ़कर शूद्र जोधपुर में बारात ले गया तो हंगामा हो गया। तोगड़िया जी से तो कुछ बचा ही नहीं है। सब जगह जाते हैं, वहाँ जरूर गये होंगे। यह क्या है? हिन्दू कहलाने वाला यह समुदाय घोड़े पर नहीं चढ़ सकता, तालाब का पानी भी नहीं पी सकता, धर्मशास्त्र को पढ़ नहीं सकता, आँख से देख नहीं सकता। हम समझ नहीं पा रहे हैं।

हिन्दुओं की संख्या में बराबर घटाव हो रहा है, करोड़ों हिन्दू ईसाई हो गये, करोड़ों मुसलमान हो गये। आज भी टुटाव (धर्मान्तरण) चल रहा है। इस घटाव के कारण पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। पत्तियों का उपचार हो रहा है, जड़ों को चूहे काट रहे हैं, उधर किसी का ध्यान ही नहीं है। आपकी जड़ है धर्मशास्त्र। धर्मशास्त्र पर टिका हुआ धर्म स्थायी होता है; और अफवाहों पर आधारित धर्म बिगड़ता ही रहता है, नये-नये धर्म सामने आते जाते हैं। उनकी कोई भी संख्या नहीं होती, बिगड़ते ही रहते हैं।

बचपन में जब हमलोग छोटे-छोटे थे तो एक सज्जन जूता बनाया करते थे। उनकी पीठ बहुत चौड़ी थी तो हमलोग दौड़कर उनकी पीठ पर लेट जाया करते थे, तब वही कहते थे कि कुँवर सा ने छू दिया। तब फिर पानी का छींटा देकर हमलोगों को पवित्र किया जाता था। आज ये आरक्षण इत्यादि उसी धार्मिक भ्रान्ति की देन हैं।

जिसमें सच्चाई नहीं, वह धर्म नहीं होता। धर्म अपरिवर्तनशील है। वह शाश्वत है। उसे बदला नहीं जा सकता। यदि बदल जाता है तो वह धर्म नहीं होता। यदि सच्चाई नहीं है तो जीवन भी निरर्थक चला जाता है। पूर्वजों का जीवन कुछ ऐसा ही बीता।

आपका धर्मशास्त्र गीता है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं गीता की उत्पत्ति बतायी कि अर्जुन! इस अविनाशी योग को सृष्टि के आदि में मैंने सूर्य से कहा, सूर्य ने अपने पुत्र मनु से कहा। मनु से जायमान होने से हम मनुष्य कहलाते हैं, मनुज कहलाते हैं, मानव कहलाते हैं। मनु आदि पुरुष थे इसलिए वह आदम कहलाते हैं। माता थीं शतरूपा। उन मनु और शतरूपा की संतान होने से, हम सभी उस राजवंश में जन्म होने से राजपुत्र हैं, सूर्यवंशी हैं क्योंकि यह गीता ज्ञान का अविनाशी योग सूर्य से मनु ने पाया, इसलिए संसार में मनुष्य कहीं भी रहता हो, राजवंश का है, राजपुत्र है, क्षत्रिय है। मनु महाराज के पश्चात् सृष्टि समाप्त ही नहीं हुई, दुबारा बनी ही नहीं, और हमारे आदिपुरुष मनु हैं, वह महाराजा थे तो सब के सब उस राजकुल के हैं, राजपुत्र हैं। यह सम्बोधन विदेशवालों को भी रखना चाहिए, भारतवाले भी रखते जा रहे हैं।

भगवान ने यह अविनाशी योग गीता ज्ञान सूर्य से कहा, सूर्य ने मनु से कहा, मनु ने अपने पुत्र महाराजा इक्ष्वाकु से कहा। दिया कुछ नहीं, मुख से कहा। सुनी बात तो स्मृति में ही रखी जा सकती है, उस अविनाशी योग को मनु महाराज ने स्मृति में धारण किया, स्मृति की परम्परा दी और उनसे राजर्षियों ने जाना। इस महत्वपूर्ण काल से यह अविनाशी योग (गीता का पूर्व नाम अविनाशी योग ही है).... इस अविनाशी योग को लोग भूल गये। योग अविनाशी है, मिटेगा कभी नहीं; विस्मृत अवश्य हो गया। वही पुरातन योग, अर्जुन! मैं तेरे प्रति कहने जा रहा हूँ क्योंकि तू प्रिय भक्त है, अनन्य सखा है। ऐसा कुछ नहीं जो मैं तुझे न दे सकूँ।

अर्जुन ने बड़ा तर्क-कुतर्क किया कि आपका जन्म तो अब हुआ है, सूर्य का जन्म बहुत पुराना है, इस ज्ञान को आप ही ने कहा था, मैं कैसे विश्वास कर लूँ? अंत में अठारहवें अध्याय में भगवान ने पूछा कि क्या तुमने एकाग्रचित्त होकर मेरे उपदेश को सुना?, क्या तुम्हारा अज्ञान नष्ट हो गया? – तब अर्जुन ने सादर प्रणाम करते हुए कहा–

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव॥ (गीता, 18/73)

भगवन्! मोह से उत्पन्न मेरा अज्ञान नष्ट हो गया, **'स्मृतिर्लब्धा'**– मैं उस स्मृति को प्राप्त हो गया हूँ। भगवान श्रीकृष्ण ने जबान से उपदेश दिया था जो मनु महाराज ने धारण कर लिया। इसलिए वास्तविक मनुस्मृति गीता ही है। अर्जुन ने कहा– भगवन्! अब मैं आपके आदेश का पालन करूँगा। उसने धनुष उठा लिया, युद्ध हुआ और विजय हुई और एक धर्म-साम्राज्य की स्थापना हुई, एक समग्र धर्मात्मा नरेश अभिषिक्त हुए, और एक धर्मशास्त्र गीता पुनः प्रसारित हो गयी। इस प्रकार गीता मानव मात्र का धर्मशास्त्र है, गीता आदिधर्मशास्त्र है। भगवान ने यह भी कहा कि यदि मेरे उपदेश को नहीं सुनोगे तो विनष्ट हो जाओगे। अतः सबके उद्धार का साधन-क्रम एकमात्र गीता में है।

अर्जुन भी कुछ भ्रान्तियों में उलझा था। अविनाशी योग जब लुप्त हो गया तो वेदव्यास ने उसे गीता के रुप में लिपिबद्ध कर दिया। पहले शिष्य-परम्परा में श्रुत-परम्परा में वह शास्त्र चला आ रहा था, उसको उन्होंने लिपिबद्ध कर दिया। उन्होंने चार वेद, भागवत, ब्रह्मसूत्र और महाभारत के अंतराल में एक गीता को एक महान युद्ध के प्रारम्भ में लिखा क्योंकि बाहरवाला युद्ध तो अठारह दिन में समाप्त हो जायेगा किन्तु क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ की लड़ाई आपके जीवन का संघर्ष है। इसमें एक बार विजय हुई तो यह शाश्वत विजय दिलाती है। इसलिए महाभारत के मध्य में ही उन्होंने सुमेरु की तरह गीता रख दिया। वेदव्यास की प्रमुख कृतियाँ इतनी ही हैं। अठारह पुराण भी वेदव्यास के कहलाते हैं लेकिन कालान्तर में व्यास-पीठ की एक परम्परा बन गयी। गीता में वेदव्यास का निर्णय है कि एक आत्मा ही सत्य है, वह भिन्न-भिन्न पुराणों में इससे अलग कैसे कह देगें कि हमसे भूल हुई; अब गणेश सत्य है, अब दुर्गाजी सत्य हो गयीं। शिवपुराण में शिव बड़े, विष्णु पुराण में विष्णु! यह बहुदेववाद एक अलग प्रश्न है। उन्होंने श्रुतज्ञान को लिपिबद्ध

किया और अन्त में स्वयं निर्णय दिया कि जितना कुछ हमने लिख डाला, मनुष्य पढ़े तो जिदगी बीत जाय। इनमें मूलतः धर्मशास्त्र कौन है?–

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥

गीता भली प्रकार मनन करके हृदय में धारण करने योग्य है। डायरी में लिखकर मत छोड़ देना। हृदय में वह होता है जो सदा स्मृति में बना रहे। यह पद्मनाभ भगवान के श्रीमुख से निःसृत वाणी है, फिर अन्य शास्त्रों के संग्रह की क्या आवश्यकता!

एकं शास्त्रं देवकीपुत्र गीतम् एको देवो देवकीपुत्र एव।
एको मंत्रस्तस्य नामानि यानि कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा॥

सृष्टि में एक ही देव है – देवकीपुत्र भगवान श्रीकृष्ण। उन्होंने श्रीमुख से जो गायन किया – गीता! उस गीता में क्या सत्य बता दिया? आत्मा! उस आत्मा को हम कैसे भजें?, कैसे पुकारें? तो एक ही मंत्र है– ओम्। गीता में सात बार ओम् शब्द आया है। भगवान ने कहा– अर्जुन! ओम् का जप कर, और मेरे स्वरूप का ध्यान धर। नाम ओम् का और स्वरूप अपना बताया, ध्यान अपना बताया। '**कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा**'– यदि दुर्लभ मानव तन मिला है तो आपका कर्तव्य-पथ एक ही है – उस परम देव परमात्मा की सेवा; उनका सेवन करो। लोग कहते हैं कि मधु से औषधि खाओ या तुलसी का रस डालकर सेवन करो, इसी प्रकार भगवान का सेवन करना है। मन-मस्तिष्क लोभ-मोह का सेवन करता है, इसे बंद करें, संयमित करें और भगवान का सेवन करें – यही शुद्ध सेवा है। इसलिए धर्मशास्त्र है गीता।

स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने अपने मुख से निर्णय दिया–

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत॥ (गीता, 15/20)

अर्जुन! संसार में यह गोपनीय से भी अति गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा

कहा गया। इसे जानकर तू सभी ज्ञान और परम श्रेय को प्राप्त कर लोगे। लोगों को और भला क्या चाहिये! कदाचित् इस शास्त्र को छोड़कर हम अन्य-अन्य विधियों से भजन करें तो नुकसान क्या है? भगवान कहते हैं–

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥ (गीता, 16/23)

अर्जुन! इस गीता शास्त्र को छोड़कर अन्य-अन्य विधियों से जो भजते हैं, उनके जीवन में न तो सुख है, न सिद्धि है और न परम गति ही है। वह सबसे भ्रष्ट हो जाता है।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥ (गीता, 16/24)

इसलिए अर्जुन! तुम्हारे कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य की व्यवस्था में कि मैं क्या करूँ, क्या न करूँ की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है। भली प्रकार अध्ययन करके गीतोक्त विधान का आचरण कर तू मुझे प्राप्त होगा। तुम मेरे अमृतमय पद को प्राप्त कर लोगे।

मनुष्य को अमृतमय पद पहले नहीं चाहिए। पहले तो उसे चाहिये रोटी-दाल। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि चार प्रकार के लोग मुझे भजते हैं– आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी। आर्त वह हैं जो दुःख-निवारण चाहते हैं। अर्थार्थी धन-धान्य, पुत्र इत्यादि समृद्धि चाहते हैं। जिज्ञासु जानना चाहते हैं कि मूलतः सत्य है क्या; और ज्ञानी अनेक जन्म भजन करते हुए अन्त में जो प्राप्तिवाला जन्म है, वह ज्ञानी भक्त मेरा स्वरूप है। मैं उसमें हूँ, और वह मुझमें है। ये चार प्रकार के भक्त मुझे भजते हैं। चारों उदार हैं। क्या भजन करने से भगवान को कुछ मिल जाता है? भजन करके हमने कौन-सी उदारता बरती? भगवान कहते हैं कि अर्जुन! आत्मा ही शत्रु और आत्मा ही मित्र है। जिन पुरुषों द्वारा मनसहित इन्द्रियाँ जीती गयी हैं, उनके लिए उन्हीं की आत्मा मित्र बनकर मित्रता में बरतती है, परम कल्याण करनेवाली होती है; और

जिनके द्वारा नहीं जीती गई, उनके लिए उन्हीं की आत्मा शत्रु बनकर शत्रुता में बरतती है, अधोगति एवं नीच योनियों में फेंकनेवाली होती है। इसलिए अर्जुन! अपनी आत्मा का अपने द्वारा उद्धार करें। उन्होंने जिससे माँगना चाहिए, उससे माँगा है। मुझे नियत गीतोक्त विधि से भजकर वह माँगते हैं– दुःख-निवारण, धन-धान्य-समृद्धि, जिज्ञासा, ज्ञान! ये सभी उदार हैं। इसलिए माँगना है तो भगवान से माँगो।

भगवान कहते हैं– मुझे नियत विधि से भजकर कुछ लोग बदले में स्वर्ग की कामना करते हैं। मैं देता हूँ। **'ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।'** (गीता, 9/21)– वे विशाल स्वर्गलोक का उपभोग करते हैं, पुण्य क्षीण हो जाने पर वहीं आ जाते हैं जहाँ से भटकाव हुआ था। इन्द्रपद तो गया। साधारण अधिकारी की कुर्सी चली जाती है तो चार दिन चेहरा देखते नहीं बनता तो जिससे इन्द्रपद खिसक गया, तो दुःख नहीं होगा क्या! **'स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई'**। इसलिए जो स्वर्ग माँगते हैं, उन्हें मैं देता हूँ किन्तु भोगने में आता है और नष्ट हो जाता है; किन्तु उस भक्त का कभी विनाश नहीं होता क्योंकि अर्जुन! मेरे पथ में बीज का नाश नहीं है, आरम्भ का नाश नहीं है। इस गीतोक्त धर्म का स्वल्प अभ्यास भी जन्म-मृत्यु के भय से उद्धार करनेवाला होता है। वस्तु मिलेगी, भोगने में आयेगी लेकिन साधना जहाँ से छूटी थी, पुनः वहीं से आगे बढ़ जायेगी।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥ (गीता, 2/40)

इस गीतोक्त धर्म में आरम्भ का नाश नहीं, सीमित फलरूपी दोष नहीं कि स्वर्ग-बैकुण्ठ या रिद्धियों-सिद्धियों में लाकर तुम्हें खड़ा कर दे। इसलिये **'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्'**– इस धर्म का स्वल्प अभ्यास भी महान जन्म-मृत्यु के भय से उद्धार करनेवाला होता है। माया के पास कोई शक्ति नहीं कि इसको मिटा दे। गीतोक्त साधन समझकर दो-चार कदम चलते बन गया तो अगले जन्म में पाँचवाँ ही कदम उठेगा और आगे

बढ़ेगा– **'अनेक जन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्'** (गीता, 6/45)– अनेक जन्मों के परिणाम में साधन करनेवाला वहाँ पहुँच जायेगा जिसका नाम परम गति, परम धाम है। अर्जुन! मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता। जब हर जन्म में वही साधन करना होता है तो धर्म-परिवर्तन कैसा? धर्म अपरिवर्तनशील है।

गीता के अनुसार, सृष्टि में मनुष्य दो प्रकार का होता है– दैव और आसुर; क्योंकि अर्जुन! अन्तःकरण की दो प्रवृत्तियाँ पुरातन है, दैवी सम्पद् और आसुरी सम्पद्। दैवी सम्पद् **'विमोक्षाय'** परम कल्याण के लिए है; और आसुरी सम्पद् अधोगति तथा नीच योनियों में भटकाने के लिए है। अर्जुन! तू शोक मत कर, तू दैवी सम्पद् को प्राप्त हुआ है, तू मुझे प्राप्त होगा। सही पूछो तो प्राणियों के स्वभाव दो प्रकार के होते हैं– दैव और आसुर। देवताओं जैसा और असुरों जैसा। आपका एक सगा भाई असुर और दूसरा देवता हो सकता है। जो परम देव परमात्मा की ओर उन्मुख है, वह देवता है, शनैः-शनैः दैवी सम्पत्ति अर्जित करनेवाला है। नीच योनियों और प्रकृति के अंधकार की ओर भटकाये, उसका नाम आसुरी सम्पद् है। इसी का नाम है प्रवृत्ति मार्ग कि सदा प्रवृत्त रहो, कदम कभी नहीं रुकेंगे, पहुँचोगे कहीं नहीं। भवाटवी में भटकते रहो। दूसरा है निवृत्ति मार्ग जिसका नाम है दैवी सम्पद्। शनैः-शनैः उत्कर्ष होते हुए जब परमात्मा का शोध किया तो पूर्ण निवृत्ति हो जायेगी। सदा रहनेवाला जीवन और सदा रहनेवाला धाम गीता की ही देन है। गीता मजहबमुक्त है।

कभी-कभी प्रश्न खड़ा होता है कि मंदिर में मत जाओ, पता नहीं क्या-क्या कहते हैं! भगवान भी भला मनुष्य के छूने से नष्ट होता है। एक मंदिर में हरिजन चले गये तो वहाँ एक दूसरा मंदिर बन गया; और इस प्रकार पुजारियों ने अपने माथे पर एक कलंक लगा लिया। भगवान के तेज के अंश मात्र से सभी जीव उत्पन्न हैं। किसी जीव ने छू दिया तो भगवान ही नष्ट हो गये – यह कौन-सा धर्म है? आज भी महात्माओं में, पण्डा-पुजारियों में यह

चलता ही रहता है। यह सब धर्मशास्त्र गीता के विस्मृत हो जाने का दुष्परिणाम है। जबकि भगवान का कहना है– **'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।'** (गीता, 9/33)– सुखरहित, क्षणभंगुर किन्तु दुर्लभ मानव तन को पाकर मेरा भजन कर। भगवान के अनुसार, भजन करने का अधिकार उन सबको है जिसे मनुष्य-तन उपलब्ध है।

गीता की एक अर्द्धाली ने भारत को गुलाम बना दिया, मनुष्य-मनुष्य को बाँट दिया– **'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः'**– अर्जुन! चार वर्ण की रचना मैंने की। तो क्या मनुष्यों को चार भागों में बाँट दिया? जिसका वितरण किया, वह सामग्री क्या है? भगवान कहते हैं– **'गुणकर्म विभागशः'**– गुणों के माध्यम से कर्म को चार भागों में बाँटा। यदि कर्म समझ में आ जायेगा तो बँटवारा भी समझ जायेंगे।

गीता के अनुसार एक आत्मा ही सत्य है। उसे विदित करने की नियत विधि योगविधि यज्ञ है। उस यज्ञ को चरितार्थ करना कर्म है। यज्ञ की एक निश्चित विधि होनी चाहिए। उसके अतिरिक्त जो समाज कर रहा है, क्या वे कर्म नहीं करते? भगवान कहते हैं- **'अन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः'**– इस यज्ञ के सिवाय अन्य जो कुछ भी किया जाता है, इसी लोक का एक बंधन कर्म है। **'तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंग समाचर'**– इसलिए यज्ञ की पूर्ति के लिए संगदोष से अलग रहकर भली प्रकार कर्म का आचरण कर। योगविधि यज्ञ, उसे कार्यान्वित करना कर्म। कर्म माने आराधना, कर्म माने चिन्तन। गीता को आप तीन बार आद्योपान्त पढ़ लें तो एक-एक प्रश्न अलग-अलग हो जायेगा।

इस कर्म को, ईश्वर-प्राप्तिवाले कर्मपथ को चार भागों में गुणों के पैमाने से बाँटा। तामसी गुण का बाहुल्य है तो आलस्य, निद्रा और प्रमाद रहेगा। कर्तव्य-पथ में न प्रवृत्त होने का स्वभाव रहेगा, अकर्तव्य कर्म छूटेंगे ही नहीं। दस घण्टा भजन में बैठोगे तो दस मिनट भी अपने हक में नहीं पाओगे। आँख मूँदकर बैठे हो तब भी तो नहीं हो रहा है, व्यर्थ समय क्यों नष्ट करते

हो? अतः हम भजन कहाँ से आरम्भ करें। मन तो लगता ही नहीं। तो **'परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।'** (गीता, 18/44) तो जो तत्त्वदर्शी महापुरुष हैं, उनकी सेवा-शरण-सान्निध्य से, वाणी-श्रवण से, टूटी-फूटी सेवा पार लगी तो साधना जागृत हो जायेगी। इस जागृति-काल में वह शूद्र है। विधि का पालन करने से वैश्य वह प्रकृति के द्वन्द्वों से शनैः-शनैः आत्मिक सम्पत्ति अर्जित करने लगता है। वह संयम करते हुए आगे बढ़ता है। साधना और उन्नत होने पर मन की लगाम भगवान अपने हाथ में ले लेते हैं। जहाँ संघर्ष झेलने की क्षमता आ जाती है फिर वह क्षत्रिय है। क्ष और त्र – तीनों गुणों के पट-पसार को काटने की क्षमता आ गयी। विकार ही खतम हो गये तो ब्रह्म में विलय की योग्यता आ गयी। वह ब्राह्मण है– **'शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च'** (गीता, 18/42)– मन का शमन, इन्द्रियों का दमन, मनसहित इन्द्रियों को इष्ट के अनुरूप तपाना – तप, और वास्तविक जानकारी, अनुभवी उपलब्धि, सरलता, ब्रह्म में विलय दिला देनेवाली योग्यता जब स्वभाव में ढल जाती है तो वह ब्राह्मण है। ब्राह्मण एक स्थिति है लेकिन अभी वह अधूरा है। जब परमात्मा का दर्शन, स्पर्श और प्रवेश पा गये तो श्रेणियाँ खतम। इस प्रकार एक ही साधन-पथ को चार भागों में बाँटा गया है। अपनी श्रेणी के अनुसार ही अपने कर्म में लगना है। लेकिन **'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टम्'**– चार वर्ण की रचना भगवान ने की, भगवान ने चार वर्ण बना दिया तो मानना ही होगा। अरे, भगवान ने क्या बाँटा? उन्होंने कर्म को बाँटा। **'तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्'** (गीता,4/13)- उसके कर्ता मुझ अविनाशी पुरुष को अकर्ता ही जान क्योंकि कर्म मुझे लिपायमान नहीं करते। 'इस स्तर से जो भी मुझे जान लेता है, उसे भी कर्म नहीं बाँधते'–यह समझकर मोक्ष की इच्छावाले पुरुषों ने इस पथ पर कदम रखा है।

भगवान कहते हैं–

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु॥ (गीता, 18/45)

स्वभाव से उत्पन्न कर्म करने की क्षमता के अनुसार कर्म में लगा हुआ पुरुष परम सिद्धि को जिस विधि से प्राप्त होता है, उस विधि को मुझसे सुन-

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥ (गीता, 18/46)

अर्जुन! जिस परमात्मा से यावन्मात्र भूतों की उत्पत्ति हुई है, जो तत्त्वरूप से सर्वत्र व्याप्त है, उस परमात्मा को स्वभाव में उत्पन्न कर्म करने की क्षमता के अनुसार अर्चन-पूजन करके मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त होता है। आपकी क्षमता शूद्र श्रेणी की है तो पूजा एक परमात्मा की; वैश्य श्रेणी की है तब भी पूजा एक परमात्मा की; उन्नत श्रेणी क्षत्रिय की है तब भी पूजा एक परमात्मा की। उत्कर्ष होते-होते ब्राह्मण श्रेणी में पहुँच गये तब भी पूजा एक परमात्मा की; लेकिन आज देखा जाता है, ब्राह्मण केवल सरस्वती, क्षत्रिय केवल दुर्गा, और वैश्य लक्ष्मी, तथा शूद्र भवानी (वनदेवी) की पूजा करे। गीता में वर्ण-व्यवस्था साधना का क्रमोन्नत सोपान है, अति उत्तम, उत्तम, मध्यम और निकृष्ट साधकों की चार श्रेणियाँ हैं; न कि मनुष्यों का बँटवारा। इस अर्द्धाली के आधार पर आज भी लोग जाति-पाँति को धर्म कह रहे हैं। जातियाँ हमारे कुल की गौरवगाथा है, हमारा कीर्तिमान है, हमारी गरिमा है। यह कबीले कृष्णकाल में भी थे। कृष्ण के समय में 100 से अधिक जातियाँ थीं। यदुवंश में वृष्णि, भोज, अंधक, यदु इत्यादि। इसी प्रकार कुरुवंश में भी जातियाँ थीं। सूत, आखेटक.... लेकिन सब जातियों का धर्मशास्त्र एक गीता ही थी; यह नहीं कि सूत की कोई अलग किताब रही हो या अंधकों का कोई और शास्त्र रहा हो। गीता के अनुसार मनु से जायमान होने से सभी अपने को बेधड़क राजपुत्र लिख सकते हैं। जातियाँ बताती हैं कि पूर्वजों ने इतने कीर्तिमान स्थापित किये थे, हम उस पावन कुल में जन्मे हैं। ये हमारी कुलीनता के सम्बोधन हैं लेकिन धर्म नहीं हैं। जब से जातियों को धर्म कह दिया, तब से भारत डूब गया क्योंकि जाति-व्यवस्था में कुछ लोगों को खाने को मिला दूध और कुछ को कहा कि तुम खाओगे तो नरक जाओगे; कुछ को

दिया महल तो कुछ को कहा– झोपड़ी में रहो। स्मृतियों में यही सब लिखा है। आप जानते ही होंगे, हमने तो संकेत मात्र किया है।

इसलिए गीता आप सबका सार्वभौम धर्मशास्त्र है, एकता और समानतामूलक है। यह भेदभाव से मुक्त है। आप पूरे संसार को इसमें भर्ती कर लें, तब भी एक सीट खाली रहेगी, पुष्पक विमान की तरह। ईसाई, मुसलमान, यहूदी इत्यादि कितने भी सम्बोधन क्यों न हो, जिस दिन गीता धर्मशास्त्र के रूप में आयेगी, सभी एक पिता के पुत्र और एक माँ की संतान के रूप में अपने को खड़ा पायेंगे।

बहुत से लोग प्रश्न करते हैं कि वेद सर्वोपरि शास्त्र है, प्राचीन है किन्तु ऐसी बात नहीं। मनु महाराज दीर्घजीवी थे। उन्होंने एक जलप्लावन देखा। मनु सृष्टि पर विचार करने लगे तो भगवान ने मत्स्य रूप में उन्हें दर्शन दिया, चार वेद प्रदान किये। मनु के जन्म से पहले सृष्टि में मनुष्य था ही नहीं। अंधेरा था कि उजाला, ज्ञान नहीं। लेकिन जीवन के उत्तरार्ध में जब जलप्लावन हुआ, उन्हें वेद मिले। भगवान ने उसका नाम श्रुति रखा कि यह श्रवण करने योग्य है लेकिन गीता तो मनु को उनके पिता सूर्य से मिली थी, वेद से पहले की है, भगवान ने उसका नाम स्मृति रखा कि यह स्मृति पटल पर सदैव विद्यमान रहे। वेद गीता का विस्तार है और संसार के सारे शास्त्र इसी का विस्तार हैं। विश्व के सारे महापुरुषों ने गीता से ही संदेश दिया है। यहूदी, ईसाई, इस्लाम, पारसी इत्यादि जो भी हों, उनकी भाषा जो भी रहे हो लेकिन तथ्य गीता के ही प्रसारित किये हैं।

एकेश्वरवाद गीता का संदेश है। करोड़ों वर्ष पूर्व यह संदेश जो भगवान ने सृष्टि के आदि में दिया था, उसी का पुनः प्रकाशन गीता है और विश्व के प्रचलित धर्म यदि उसी एकेश्वरवाद का पालन कर रहे हैं तो नया क्या कह दिया? मनुष्य के व्यक्तित्त्व को उभारकर उसे प्रभुत्वसम्पन्न बनाने की जो विद्या गीता में है, वह अन्यत्र कहीं नहीं है। गीता समस्त प्राणियों को सामर्थ्यवान बनाती है।

'ईश्वर एक है' यहाँ तक तो सभी बताते हैं किन्तु उसे प्राप्त कैसे किया जाय?, उसका दर्शन, स्पर्श और उसमें स्थिति का साधन केवल गीता में है। गीता आपका धर्मशास्त्र है और जिस दिन यह जन-जन तक, झोपड़ी से महलों तक पहुँच जायेगी, तो धर्म के विषय में न संदेह है, न कभी होगा। न छूने से धर्म नष्ट होगा, न किसी के साथ खाने से धर्म नष्ट होगा।

गीता मनु को सूर्य से मिली थी। मनु से इक्ष्वाकु और राजर्षियों ने जाना। कालान्तर में यह विस्मृत हो गयी। इस विस्मृति काल में बहुत सी रूढ़ियाँ पैदा हो गयीं। उनमें से एकाध रूढ़ि का शिकार अर्जुन भी था। उसने कहा– गोविन्द! रथ को दोनों सेनाओं के मध्य खड़ा कीजिए। मैं देख तो लूँ, किन-किनके साथ युद्ध करना है। जहाँ देखा तो वह काँप गया, ज्वर सा हो आया। वह बोला– गोविन्द! मैं युद्ध नहीं करूँगा। दोनों ही सेनाओं में मैं अपने वंश को देख रहा हूँ। अपने कुल को मारकर मैं कैसे सुखी होऊँगा? **'जातिधर्माश्च शाश्वता'**, **'कुलधर्माः सनातनाः'** (गीता, 1/40)– कुलधर्म सनातन धर्म है, जातिधर्म शाश्वत धर्म है। ऐसा युद्ध करने से सनातन धर्म का लोप हो जायेगा, कुल की स्त्रियाँ दूषित हो जायेंगी, वर्णसंकर पैदा होगा जो कुल और कुलघातियों को नरक में ले जाने के लिए होता है, पिण्डोदक क्रिया का लोप हो जायेगा, पितर गिर जायेंगे। गोविन्द! हमलोग समझदार होकर भी पाप करने को उद्यत हुए हैं। क्यों न इस पाप से बचने के लिए हमें उद्योग करना चाहिए।

इस प्रकार अर्जुन ने लगातार पाँच प्रश्न कर दिया कि जातिधर्म, कुलधर्म सनातन धर्म है। पिण्डोदक क्रिया का लोप न होने पाये, यह सनातन धर्म है। कुल की स्त्रियों की शुद्धता सनातन है। वर्णसंकर न हो, यह सनातन है। इनका पालन करना पुण्य है और न पालन करना पाप है। वह धनुष फेंककर रथ के पिछले भाग में बैठ गया कि ये शस्त्रधारी कौरव मुझ शस्त्रविहीन को मार डालें तो मरना श्रेयस्कर है। गोविन्द! मैं युद्ध नहीं करूँगा।

इस धार्मिक भ्रान्ति ने अर्जुन को मौत के मुँह में धकेल दिया। जिस अर्जुन के पीछे लाक्षागृह तैयार हुआ, भीम को जहर दिया गया, वनवास काल में असुरों को नियुक्त किया गया कि अर्जुन जब ध्यान में बैठा हो, उस समय मार डालना; ऐसे अर्जुन को दुर्योधन निःशस्त्र पाता तो छोड़ता क्या? भगवान श्रीकृष्ण ने हँसते हुए से कहा–

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन॥ (गीता, 2/2)

अर्जुन! तुझे इस विषम स्थल में यह अज्ञान कहाँ से हो गया? अर्जुन तो सनातन-धर्म के लिये आहें भर रहा था, भगवान ने कहा– यह अज्ञान कहाँ से उत्पन्न हो गया? न यह कीर्ति बढ़ानेवाला है, न ही कल्याण करनेवाला है, वरिष्ठ महापुरुषों ने भूलकर भी इसका आचरण नहीं किया। '**अनार्यजुष्टम्**'– अनार्यों का यह चरित्र तुमने कहाँ से सीख लिया? आर्य उसे कहते हैं जो अस्तित्व एकमात्र परमात्मा का उपासक हो। अविनाशी का उपासक आर्य कहलाता है। यह गीता आर्यदर्शन है। जो परमात्मा के प्रति श्रद्धावान हो, वह आर्य है। उसको प्राप्त करने की नियत विधि का आचरण करता है, वह आर्यव्रती है। वह परमात्मा सनातन है, शाश्वत है इसलिए हम सनातनधर्मी हैं और वह ईश्वर '**सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति**'– सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय देश में निवास करता है, उस हृदयस्थ ईश्वर का उपासक होने से हम हिन्दू कहलाते हैं। '**हृदि सन्निविष्टो**'– हृदय में समाविष्ट होकर परमात्मा सदा स्थित रहते हैं। ईश्वर कहीं बाहर पेड़ों में, पत्तियों में, पहाड़ों में नहीं, नदियों में नहीं, नालों में नहीं। हृदयस्थ ईश्वर का उपासक होने से हम हिन्दू कहलाये। हिन्दू कोई नया शब्द नहीं है। यह गीतोक्त परिमार्जित शब्द है। यह पूर्वजों के द्वारा मान्यता प्राप्त है। हजार-डेढ़ हजार वर्ष की गुलामी ने इस परिभाषा को भुला दिया है। ऐसा नहीं कि यह हिन्दू शब्द पारस (ईरान) से आया है। अर्जुन ने समर्पण किया–

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।। (गीता, 2/7)

भगवन्! यदि यह अज्ञान है तो मैं इसके आगे कुछ भी नहीं जानता। आप ही बताइये, सत्य क्या है? बताकर छोड़ मत दीजिए, मैं लड़खड़ाऊँ, न चल सकूँ तो मुझे साधिये, सँभालिये क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ। इस प्रकार गीता गुरु-शिष्य संवाद है। यह उतना ही जीवन्त है जितना अर्जुन काल में थी; और उतना ही आज आपके लिए लागू है। अर्जुन ने कहा कि यदि यह सत्य नहीं है तो भगवन्! आप ही बताइये, सत्य क्या है? भगवान ने कहा–

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।। (गीता, 2/16)

अर्जुन! सत्य वस्तु का तीनों कालों में कभी अभाव नहीं है; और असत्य का अस्तित्व नहीं है, उसे रोका नहीं जा सकता, वह है ही नहीं। इन दोनों का अंतर तत्त्वदर्शियों ने देखा। किसी दस भाषा के विद्वान ने नहीं देखा, किसी समृद्धशाली रईस ने नहीं देखा, केवल तत्त्वदर्शियों ने देखा। परम तत्त्व है परमात्मा। जिस किसी ने उस तत्त्व को विदित किया, उन्होंने देखा। उन्होंने आत्मा को देखा कि यह,

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।। (गीता, 2/24)

अर्जुन! यह आत्मा अवध्य है, अच्छेद्य है। इसे शस्त्र नहीं काट सकता। अशोष्य अर्थात् वायु नहीं सुखा सकता। अदाह्य– अग्नि इसे जला नहीं सकता। आकाश इसे अपने में विलय नहीं कर सकता। यह नित्य है। अनित्य माने नश्वर, नित्य माने शाश्वत अतः यह आत्मा शाश्वत और सनातन

है। हम कौन हैं? सनातनधर्मी। सनातन कौन है? आत्मा। यदि हम आत्मा के प्रति श्रद्धावान नहीं तो हम धार्मिक भी नहीं है। हम धर्म के लिए आहें भरते हैं तो प्रत्याशी अवश्य हैं लेकिन आत्मा को विदित करने का रास्ता हमें नहीं मालूम। हम शाश्वत के पुजारी हैं। शाश्वत केवल आत्मा है। हम सत्य के अन्वेषी हैं और सत्य केवल आत्मा है। यह काल से अतीत है, अमृत तत्त्व है। जो ब्रह्म की परिभाषा है, वही आत्मा की परिभाषा है। लेकिन यहाँ धर्म शब्द का प्रयोग नहीं किया गया। धर्म शब्द का प्रयोग साधना के सम्बन्ध में आया है–

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥ (गीता, 2/40)

भगवान ने कहा– अर्जुन! अब तक यह बुद्धि ज्ञानयोग के विषय में कही गयी। कौन-सी बुद्धि? यही कि युद्ध कर। युद्ध में जीतोगे तो सर्वस्व, हारोगे तो देवत्व; लाभ में लाभ, हानि में भी लाभ इसलिए लाभ-हानि को समान समझकर दृढ़ निश्चय के साथ युद्ध में प्रवृत्त हो। ज्ञानयोग का मतलब यह नहीं कि हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाओ और कहो कि मैं तो आत्मा हूँ, शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ। भगवान ने कहा– इसी को निष्काम कर्म के विषय में सुन जिस बुद्धि से युक्त हुआ तू कर्मों के बन्धन को अच्छी प्रकार नाश करेगा। इस निष्काम कर्म में आरम्भ का नाश नहीं है। माया में कोई शक्ति नहीं कि इसे नष्ट कर दे। इस साधन में सीमित फलरूपी दोष नहीं कि स्वर्ग-बैकुण्ठ या रिद्धियों-सिद्धियों में भरमा कर खड़ा कर दे। इसलिए **'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य'**–इस धर्म का स्वल्प अभ्यास भी जन्म-मृत्यु के महान भय से उद्धार करने वाला होता है। यह है धर्म। यह हमें धारण करना है। जहाँ आचरण में ढालने का प्रश्न आया वहाँ भगवान श्रीकृष्ण ने धर्म शब्द का प्रयोग किया।

मनुष्य में एक बड़ी दुर्बलता होती है कि हमारे ऐसा पतित, हमारे जैसा पापी.... भगवान भला मुझसे क्यों प्रसन्न होंगे? कहीं लोग ऐसा बचाव न निकाल लें, इस पर भगवान कहते हैं–

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।। (गीता, 9/30)

'सुदुराचारी'.... एक होता है दुराचारी, और दूसरा अत्यन्त दुराचारी। चाहे वह अंगुलिमाल और बाल्मीकि का उस्ताद ही क्यों न हो, वह अत्यन्त दुराचारी भी यदि अनन्य भाव से मुझे भजता है (अनन्य माने अन्य न। मुझे छोड़कर अन्य देवी-देवताओं को न भजता हुआ जो मुझे भजता है), वह साधु मानने योग्य है क्योंकि वह यथार्थ निश्चय से लग गया है। मूलतः जो यथार्थ है, सत्य है, तत्त्व है, उसका निश्चय वहाँ स्थिर हो गया है। किन्हीं अंशों में उस सत्य को उसने अपने में सँजोया है, साधा है इसलिए साधु मानने योग्य है। इतना ही नहीं, **'क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति। कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।।'** (गीता, 9/31)– वह शीघ्र धर्मात्मा हो जाता है। कौन? वही दुराचारी। एक परमात्मा में अनन्य भाव से लगनेवाला वह दुराचारी साधु मानने योग्य है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है। परम तत्त्व एक परमात्मा को धारण करने की क्षमता वाला हो जाता है। अर्जुन! निश्चयपूर्वक जान कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता। अस्तु, धर्मात्मा वह नहीं जो दिन में तीन बार स्नान करता हो, धर्मात्मा वह नहीं जो धर्म के नाम पर कुछ न कुछ कर डालता हो। धर्मात्मा वह है जो एक परमात्मा में अनन्य भाव से समर्पित है और उसको प्राप्त करने के लिए गीतोक्त विधि का आचरण करता है। अन्त में भगवान ने कहा–

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः।। (गीता, 9/34)

अर्जुन! मेरे में मन लगा, मेरा अनन्य भक्त बन, मुझे नमस्कार कर, और इतना ही नहीं,

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। (गीता, 18/66)

हम सबके पास बहुत से धर्म हैं। अर्जुन के पास भी बहुत से धर्म थे – पिण्डोदक क्रिया, जातिधर्म, कुलधर्म। भगवान कहते हैं– **'सर्वधर्मान् परित्यज्य'**– उन सब धर्मों को दूर फेंक दे, **'मामेकं शरणं व्रज'**– एकमात्र मेरी शरण हो जा, मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तू मुझे प्राप्त होगा। भगवान श्रीकृष्ण महायोगेश्वर थे इसीलिए गीता के समापन पर संजय ने निर्णय देते हुए कहा कि राजन्! विजय पाण्डवों की होगी क्योंकि,

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥ (गीता, 18/78)

जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण हैं – जो स्वयं योगी हों और अन्य को योग प्रदान करने की क्षमता हो, उन्हें योगेश्वर कहते हैं। जब किसी को कुछ दे ही नहीं सकते तो वह वाचमैन है। और क्या है! माल किसी और का होगा। किन्तु जिसमें योग प्रदान करने की क्षमता हो, उसे योगेश्वर कहते हैं। उसी को तीर्थंकर भी कहते हैं। जो स्वयं पावन हो और दूसरों को भी पवित्र करने की क्षमता रखता हो, उसे तीर्थंकर कहते हैं। इसी को तथागत कहते हैं - जो तत्त्व से अवगत है। यह घुमा-फिराकर केवल भाषाओं का अंतर है। जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण हैं और जहाँ **'पार्थो धर्नुधरः'**– लक्ष्य पर दृष्टि साधनेवाला अनुरागी अर्जुन है, अनुरागी पथिक है, वहीं श्री है, विजय है, विभूति और अचल नीति है। राजन्! विजय पाण्डवों की होगी।

अनुरागरूपी अर्जुन। आपके हृदय में इष्ट के अनुरूप लगाव का नाम है अनुराग। प्रकृति में लगाव का नाम है राग। जिस घट में अनुराग पैदा हो गया, गीता के अनुसार टूटी-फूटी सेवा साल-छः महीने भी पार लगी तो आप पाओगे कि आपके पीछे कोई लगा हुआ है, कोई हमारा मार्गदर्शन कर रहा है और जहाँ चिन्तन थोड़ा उन्नत हुआ तो भगवान गुरु भी ढूँढ़कर दे देते हैं, भगवान योगक्षेम करने लगते हैं।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥ (गीता, 9/22)

हम चाहते हैं कि यदि भारत को बचाना हो और भारत विश्वगुरु था, विश्वगुरु है, भारत के पास परोसी थाली रखी है और वह भूखों मर रहा है। आप केवल यह थाली ले लो। जिस प्रभु की हमें चाह है, उनका सीधा उपदेश है, आदेश-पत्र है गीता! इस आदेश का आप पालन करो, आप विश्वगुरु थे और गुरु ही रहेंगे। आपको कोई मिटा नहीं सकता। गीता आरम्भ में उतरी थी, सूर्य से कहा, सूर्य ने मनु से.... मानव जाति का आगमन महाराजा मनु से है। पृथ्वी पर पता नहीं कहाँ मनु जन्मे! उनसे भी पहले जब गीता उतरी, पूरे विश्व के लिए उतरी, इसलिए यह विश्व मनीषा का सम्पूर्ण शास्त्र है। यह विस्मृत हो गयी। दुबारा जब प्रसारण हुआ तो भारत में कुरुक्षेत्र में हुआ। इसलिए भारतीय मूल के लोगों का मूलशास्त्र केवल गीता है; और कोई हो भी नहीं सकता। यदि है कोई तो लोग उसे लाते क्यों नहीं? जितने भी उपलब्ध शास्त्र हैं, विविध भाषाओं में गीता के ही अनुवाद हैं। हम किसी भाषा में पढ़ सकते हैं लेकिन मूल सिम्बल गीता रहनी चाहिए। इस संसार की हजारों भाषायें हैं। किसी भी भाषा के माध्यम से हम नाम जप सकते हैं, किसी भाषा के माध्यम से हम सुमिरन भी कर सकते हैं लेकिन तथ्य गीता के ही होते हैं।

एक ईश्वर कहना आसान है लेकिन ईश्वर को भजें कैसे?, पावें कैसे?, भजन की जागृति क्या?, योगक्षेम क्या?, अनुभवी उपलब्धि क्या? – ये सब आपके हृदय में गीता से जागृत हो जायेंगी। जब आप चिन्तन करने लगोगे – ओम् अथवा राम, कोई दो-ढाई अक्षर का नाम, जो छोटा हो, उसका जप करें। चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाना खाते, पानी पीते – हर समय नाम का स्मरण बना रहे तो सोने में सुहागा है। सुबह-शाम बैठकर आधा घण्टा, बीस मिनट समय अवश्य देना चाहिए। भगवान जानते हैं कि यह मुझे पुकार रहा है। वह यह भी जानते हैं कि इसको क्या चाहिये? वे देंगे, भविष्य में भी जो माँगोगे, मिलेगा। स्तर उठ जाने पर भगवान उतना ही देंगे जिसमें आपका कल्याण है क्योंकि **'कुपथ माग रुज ब्याकुल रोगी। बैद**

न देहि सुनहु मुनि जोगी॥'– कोई व्याकुल रोगी यदि कुपथ्य माँगता है तो वैद्य उसे नहीं देता क्योंकि वह जानता है कि उस कुपथ्य में मौत छिपी हुई है। इसलिए जिसमें कल्याण है, भगवान वही देते हैं; नारद की तरह, भले ही एकाध जन्म छटपटाओ कि ब्याह क्यों नहीं हुआ।

भगवान के सामने छल-कपट नहीं लगता। गुरु महाराज का कहना था कि जो हृदय में हो, वह जबान पर हो। जबान पर कुछ और है, हृदय में कुछ और है, भगवान के सामने, सद्‌गुरु के सामने ऐसे साधक का कभी कल्याण नहीं होता। सुदामा थोड़ी भूल कर बैठे, एक मुट्ठी चना छिपाकर खा गये। वह जनम भर खाने के लिए तरस गये, एक-एक दाने को मोहताज, पाँव में चप्पल नहीं, लपेटने के लिए कोई कपड़ा नहीं, लड़के आधा पेट खाकर सो जाया करते थे, लेकिन जब प्रायश्चित पूरा हो गया तो उनके पास वह सबकुछ था जो भगवान के पास था। द्वारिकापुरी तो समुद्र में डूब गयी लेकिन सुदामापुरी के अवशेष आज भी दर्शन करने को मिलते हैं। भगवान जब देते हैं तो अपनी सारी भगवत्ता दे देते हैं। वे अविनाशी हैं तो अविनाशी पद दे देते हैं। वे सर्वज्ञ हैं तो सर्वज्ञ पद दे देते हैं। वे लक्ष्मीपति हैं तो लक्ष्मीजी छायी रहेंगी, रोज कमाने की जरूरत नहीं रहेगी। हम भगवान को भजते भी हैं लेकिन आधे मन से। आधा मन डटा रहता है अधिकारियों और नेताओं के अगल-बगल कि हमारी बड़ी जान-पहचान है, हम वहाँ से काम निकाल लेंगे। द्रौपदी का जब चीर-हरण होने लगा तो द्रौपदी ने भीम से कहा– क्या देखते हो? जिस जांघ को इसने थपथपाया है, तोड़ दो गदा से। अर्जुन से कहा– उठा ले गाण्डीव, भून दे इस सारी की सारी सभा को। जब प्रतिष्ठा ही नहीं रहेगी तो जीने से क्या लाभ? भीष्म से कहा कि आपने कुरुवंश के गद्दी के रक्षा की प्रतिज्ञा ली है। कुरुवंश की गद्दी इस चबूतरे का नाम नहीं है। कुरुवंश के लज्जा की रक्षा करें, आप बुजुर्गों के सामने पुत्रवधू का वस्त्र-हरण हो रहा है। मर्यादा की रक्षा ही कुरु-गद्दी की रक्षा है। भीष्म भी नीचे देखने लगे। अंधे धृतराष्ट्र को भी राजनीति की याद दिलायी। वह शूरवीरों की

पत्नी थी, स्वयं ही लड़ गयी लेकिन जब देखा कि कोई चारा नहीं, तब दोनों हाथों से साड़ी छोड़ दिया, आँखें बन्द कर लिया, 'हे कृष्ण, हे गोविन्द, मोहन, मुरारी...'! चीर लगा बढ़ने। दस हजार हाथी के बल वाले दुःशासन का सारा बल समाप्त। वह भी बेहोश होकर गिर पड़ा। द्रौपदी भी अर्द्धविक्षिप्त की तरह बैठ गयी। जहाँ द्रौपदी की आँख खुली तो कृष्ण सामने खड़े थे। चीत्कार मारकर रोती हुई द्रौपदी चरणों में गिर गयी। वह बोली– भइया, आपने बहुत देर कर दी, हमारे तो सब कर्म हो गये। कृष्ण बोले– नहीं बहन, हमने कोई देर नहीं किया। तुमने हमको बुलाया ही नहीं। मैं तो यहीं था। मैं चाहता भी था कि मुझे पुकारो, किन्तु तुम तो भीम को बाहुबल याद दिला रही थी, अर्जुन को दिव्य अस्त्रों की याद दिला रही थी, पितामह को गद्दी की रक्षा का तरीका बता रही थी। तू स्वयं भी तो लड़ रही थी, हमको कहाँ बुलाया?

अपबल तपबल और बाहुबल चौथो बल है दाम।
सूर किशोर कृपा ते सब बल हारे को हरिनाम।
सुना री मैंने निर्बल के बल राम॥

अपबल अर्थात् अपना बल, तपबल अर्थात् अपनी तपस्या का बल, बाहुबल कि इतने हमारे सहायक और **'चौथो बल है दाम'**– दाम भी बहुत तगड़ा बल है। कभी-कभी रात भर में तख्त पलट देता है। दस-बीस करोड़ इधर-उधर फेंको, काम बन गया किन्तु एक प्रभु की कृपा ही वास्तविक और सम्पूर्ण बल है। लेकिन वह बल तब है जब आप अपने क्षुद्रबलों को हार जाओ। द्रौपदी की तरह सर्वांगीण समर्पण जिस पल हो जायेगा, भगवान आगे-पीछे, नीचे-ऊपर सर्वत्र से योगक्षेम लिये हुए आपके साथ हैं। वही है आपका गीता शास्त्र।

हीन भावना से गर्दन लटकाकर भारत कब तक जीयेगा? जिस दिन गीता झोपड़ी से महलों तक पहुँच जायेगी, हीन भावनाओं से सदा-सदा के लिए मुक्ति मिल जायेगी। स्पृश्य-अस्पृश्य कोई है भी, मनुष्य को चाहकर भी

कोई तीसरी श्रेणी में नहीं बाँट सकता। कोई या तो दैवी सम्पद् प्रधान होगा या आसुरी प्रकृति प्रधान। तीसरा कोई विभाजन नहीं है तो जायेगा कहाँ! अब कपड़ा धोया तो धोबी, लोहा पीटा तो लुहार, सोना कूटा तो सोनार.... यह तो उद्योग है। यह जाति नहीं है। आप करोड़ों उद्योग करो, सबकी जाति एक है कि हम किसके वंशज हैं! जाति हमारे कुल-खानदान के सम्बोधन हैं। उसे आप रखें, लेकिन सारे कुलों के लिए धर्मशास्त्र एक है – गीता।

एक छोटी-सी बात और। अन्तिम सन्धि-प्रस्ताव विफल हो गया जब श्रीकृष्ण महाभारत युद्ध से पूर्व कौरवों की सभा में संधि-प्रस्ताव लेकर आये थे और दुर्योधन ने उन्हें बन्दी बनाने का प्रयास किया था। श्रीकृष्ण के लौटते समय कर्ण उन्हें पहुँचाने आया। वह बोला– केशव! मेरे प्रिय मित्र दुर्योधन की मूर्खता को क्षमा कर दें। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा– आदमी को क्षमा किया जाता है, वह तो पूरा आदमी भी नहीं है। धृतराष्ट्र पृथ्वी से चिपका हुआ एक पेड़ है और दुर्योधन उसकी एक टहनी है। उसे अपने कटने का पता भी नहीं लगेगा। क्षमा उसे किया जाता है जो बात सुने-समझे। भगवान ने कहा– कर्ण! जानते हो तुम कौन हो? तुम्हारे माता-पिता कौन हैं? कर्ण बोला– केशव! जानता तो नहीं हूँ, अनुमान प्रतिदिन लगाता रहता हूँ कि मेरी माता कोई राजकुमारी रही होगी। किसी परिस्थिति में उसने मुझे बहा दिया। किसी राजघराने में उसकी शादी हुई होगी। उनको कई सुंदर सन्तानें भी होंगी। राजकीय वैभव भी होगा क्योंकि जिस वस्त्र में मुझे लपेटा गया था, वह राजकीय वस्त्र है। आज भी वह रखा हुआ है। भगवन्! क्या आप जानते हैं? श्रीकृष्ण बोले– अच्छी तरह जानता हूँ। कर्ण ने कहा– प्रभो! जल्दी बताइये कि मैं कौन हूँ?, मेरी वास्तविकता क्या है?

भगवान ने कहा– कर्ण! तुम पाँच महारथी शूरवीरों के ज्येष्ठ भ्राता हो। कर्ण ने कहा– पाँच तो पाण्डव हैं। कृष्ण बोले– हाँ, तुम कौन्तेय हो, तुम पाण्डुपुत्र हो, सूर्यपुत्र हो, सम्पूर्ण सत्य यही है। कर्ण की आँखों में अश्रु छलक आये, वह बोला– केशव! दुर्योधन ने मुझे राज्य देकर राजा अवश्य

बना दिया लेकिन हीन भावनाओं से मुक्ति नहीं दिला सका। आज आपने यह संदेश देकर मुझे हीन भावनाओं से मुक्ति प्रदान कर दिया, किन्तु अब अपने अनुजों को मैं कैसे मार सकूँगा? जबकि कर्ण ने प्रतिज्ञा कर रखी थी, कहा था कि युद्ध की व्यवस्था कर दो, अर्जुन को मरा समझो। मैं इसीलिए जीवित हूँ। कर्ण ने जीवनभर से की गयी प्रतिज्ञा एक पल में त्याग दिया। केशव! अर्जुन मेरा अनुज है, मेरे द्वारा रक्षणीय है। भला अब मैं उसको बाणों से कैसे मारुँगा? जी चाहता है केशव, कि अब मैं मरुँ और अर्जुन जिये। यह बताइए कि इस सूचना के बदले मैं आपकी क्या सेवा करूँ? श्रीकृष्ण ने कहा– कर्ण! तुम अपने भाइयों से मिल जाओ। तुम बनोगे सम्राट, धर्मात्मा युधिष्ठिर बनेंगे युवराज। महापराक्रमी भीम और अर्जुन तुम्हारे अंगरक्षक होंगे। विनयी नकुल, सहदेव तुम्हारी सेवा में रहेंगे। तुम छः भाई इकट्ठे हो जाओगे तो कोई सोच भी नहीं सकता कि इनके ऊपर हमला भी किया जा सकता है। यह अरबों लोगों का रक्तपात टल जायेगा।

कर्ण ने कहा– केशव! युद्ध तो मैं दुर्योधन की तरफ से ही करूँगा क्योंकि मैं उसका ऋणी हूँ। ऋण मुझे पसंद नहीं है। मैं जानता हूँ कि विजय पाण्डवों की ही होगी क्योंकि आप जिधर हैं, उधर विजय है। किन्तु एक प्रार्थना है, यह बात युधिष्ठिर से मत कहियेगा। वह है धर्मात्मा। वह राजमुकुट तुरन्त मेरे सिर पर रख देगा और मैं ऋण चुकाने के लिए दुर्योधन के सिर पर रख दूँगा। अब तक मेरे भाईयों ने अनेकानेक संकट झेले हैं, जंगल में अज्ञातवास का कष्ट भी उठाया है। इससे वे आगे भी कष्ट झेलते रह जायेंगे। मैं एक पल नहीं चाहता कि मेरे अनुज भविष्य में कष्ट पायें। केशव! आपसे प्रार्थना है, जब तक मेरे शरीर में स्वास है तब तक यह रहस्य आप युधिष्ठिर से मत कहना। अपने अनुजों पर मैं कैसे वार करूँगा? जन्मभर का बैर भ्रातृत्व स्नेह में बह गया। गीता वही शास्त्र है। यह आप सबको एक ईश्वर की संतान कहता है। दूसरा कोई कण बीच में आया नहीं जो आपको पैदा करे। **'अमृतस्य पुत्राः'**–आप अमृत अंश है।

गीता आपको देती है बैर-भाव से मुक्ति, क्योंकि आप एक पिता के पुत्र हैं। भगवान कहते हैं– मैं ही परम चेतन बीज रूप से पिता और प्रकृति गर्भ धारण करनेवाली माता है। सांसारिक माता-पिता तो निमित्त मात्र हैं। **'ममैवांशो जीवलोके'** (गीता, 15/7)– अर्जुन! यह जीवात्मा मेरा विशुद्ध अंश है। उतना ही पावन जितना भगवान। मन सहित इन्द्रियों के व्यापार को लेकर जीवात्मा शरीर को त्यागता है, त्यागकर नवीन शरीररूपी वस्त्र को धारण कर लेता है। फिर उस नवीन शरीर में **'अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते'**– मनरूपी अधिष्ठाता के माध्यम से पुनः विषयों में प्रवृत्त हो जाता है किन्तु शरीर छोड़कर जाते हुए को, नवीन शरीर धारण करते हुए को, पुनः विषयों में प्रवृत्त होते हुए को **'विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः।'** (गीता, 15/10)– मूढ़ लोग नहीं जानते, ज्ञानरूपी नेत्रवाले भली प्रकार जानते हैं। मनसहित इन्द्रियों का व्यापार अर्थात् सात्त्विक गुण के कार्यकाल में मृत्यु को प्राप्त पुरुष देव इत्यादि उन्नत योनि पाता है, राजसी गुणवाला मानव तन पाता है और तामसी गुणवाला पशु, कीट-पतंग इत्यादि अधम योनि प्राप्त करता है। हर हालत में योनि प्राप्त करता है। मनसहित इन्द्रियों का व्यापार केवल मानव में होता है, पशुओं में नहीं, इसलिए भगवान कहते हैं– मनुष्य मेरा विशुद्ध अंश हैं। आप ईश्वर की संतान हो और पूरे विश्व में कहीं भी रहो, आपका आदिधर्मशास्त्र गीता ही है। भारत का मूल ग्रन्थ गीता छोड़कर दूसरा है ही नहीं। आपको चाहिये कि बच्चों के बस्तों में, माताओं के रसोईंघर में, आप सब लोगों के पास इसे रहना चाहिए। आपको पवित्र होकर, हाथ धोकर, स्वच्छता के साथ इस धर्मग्रन्थ को उठाना और रखना चाहिए। अब आप सबको यह गीता ग्रन्थ भेंट किया जाता है।

बोलिये, श्री गुरुदेव भगवान की जय।

* * * * *

श्री एम.के. सिन्हा जी– पूज्य गुरुदेव के श्रीमुख से गीता के श्लोकों का यथार्थ चित्रण आपने सुना। हर अध्याय से जो भी मोती वह चुन सकते थे, आपके सामने उन्होंने रखा। आप सभी से प्रार्थना है कि अपने स्थान पर बैठे रहें। ये पानी की बूँदें हमारा-आपका कुछ भी नहीं बिगाड़ पायेंगी। ग्लोबल कोआर्डिनेटर श्री मेहता जी से हम अनुरोध करेंगे कि दो शब्दों में कार्यक्रम का समापन करें।

* * * * *

श्री मेहता जी– परम पूज्य महाराज जी, परम आदरणीय श्री अशोक सिंहल जी, पूज्य आचार्य श्री गिरिराज किशोर जी, आदरणीय श्री प्रवीण भाई तोगड़िया, यहाँ उपस्थित हैं अपने बीच में प्रोफेसर सुब्रह्मण्यम स्वामी, और विदेशों से आये हुए सब अपने भाई-बहन और इस सभागार में बैठे हुए सब छात्र, मातायें, बहनें और भाइयों! आज गंगा के इस पवित्र तट पर श्रीमद्भगवद्गीता का विशेष संदेश हमको एक अधिकृत वाणी से सुनने को मिला है। माननीय श्री अशोक जी ने जिस प्रकार से स्वामीजी का परिचय कराया है, उससे हम सबको यह विश्वास होता है कि इस विषय को इस ढंग से लिया जाय जिससे श्रीमद्भगवद्गीता हमारे राष्ट्रीय जीवन में एक धर्म की प्रेरणा का स्रोत बन जाय और इस प्रकार का आयोजन करने के लिए स्वामीजी का आशीर्वाद और यहाँ की सब व्यवस्था, जो हम लोगों ने देखी, हमको जो स्वागत का अनुभव हुआ, और इस प्रकार के कार्यक्रम में हम सबको उपस्थित होने के लिए निमंत्रण मिला, उसके लिए मैं स्वामी जी का और उनकी पूरी व्यवस्था करने वाले अपने भाईयों का मैं हृदयपूर्वक आभार प्रकट करता हूँ। आप सबकी ओर से भी विदेशों से आये हुए बन्धुओं की ओर से भी मैं परम पूज्य स्वामीजी को और उनकी पूरी व्यवस्था को आदर से प्रणाम करता हूँ। केवल एक ही बात कहूँगा क्योंकि मुझे कुछ विषय रखना था, लेकिन आपको इसके बाद कुछ सुनने की जरूरत नहीं है। मैं आपसे केवल दो बात कहूँगा। मैं एक उच्चारण कराना चाहता हूँ कि 'धर्म की जय

हो', आप सब कहेंगे–'धर्म की जय हो... धर्म की जय हो... धर्म की जय हो'; और दूसरा बोलना है हमें– 'भारत माता की जय', 'भारत माता की जय', 'भारत माता की जय'। जो लोग 'धर्म की जय' कहते हैं और 'भारत माता की जय' कहते हैं, उनको हम हिन्दू कहते हैं तो इस प्रकार के एक विशिष्ट समाज में हम बैठे हैं, हम देखेंगे कि जहाँ पर इस दो घोष को करनेवाले नागरिक रहते हैं, उसे हम हिन्दू राष्ट्र कहते हैं; और किसी भी कारण से नहीं। ये हिन्दू राष्ट्र का जो संदेश है, सारे जगत के कल्याण के लिए है। यहाँ गंगा के पवित्र तट पर बैठे हुए सभागृह में हम अपने मन में संकल्प लें, यह हिन्दू राष्ट्र का मैसेज, जो संदेश है, वह धर्म का संदेश है, समग्र मानव-जाति के लिए है। बस इतना कहकर मैं अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

नमस्कार....धन्यवाद....

॥ ॐ ॥